International Journal of Applied Research 2019; 5(2): 222-225

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(2): 222-225
www.allresearchjournal.com
Received: 19-12-2018
Accepted: 23-01-2019

ज्वाला चन्द्र चौधरी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ल०ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Correspondence Author:
ज्वाला चन्द्र चौधरी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ल०ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

बहुजन समाज और डॉ० तुलसीराम

ज्वाला चन्द्र चौधरी

साराश
डॉ० तुलसीराम जिस समाज में पैदा हुए वह वास्तव में बहुजन समाज है। उन्होंने उस समाज की गहरी पीड़ा को भोगा था, जिसके कारण उनकी रचनाओं को ये प्रसंग अत्यंत गंभीरता से उद्घाटित हुआ है। तुलसीराम ने अपनी आत्मकथा के दोनों भागों– 'मुर्दहिया' तथा 'मणिकर्णिका' में अपनी वैयक्तिक पीड़ा के साथ अपने परिवेशगत सत्य को प्रस्तुत किया है। उनकी चेतना में बहुजन समाज की रीति–नीति पूर्णता के साथ उभरकर सामने आता है।

प्रस्तावना
प्रोफेसर, साहित्यकार तुलसीराम ब्राह्मणवाद के घोर विरोधी हैं, परन्तु वर्त्तमान दलित–बहुजन विचारधाराओं की कई घिसी–पिटी मान्यताओं से वे सदैव अपनी असहमति भी जताते रहे। उन्हें गाँधी से शिकायत रही, जो वर्ण–व्यवस्था को दैवीय मानते थें। लेकिन वे यह नहीं मानते थे कि गाँधी दलितों के दुश्मन थे। गाँधी को खलनायक की तरह दर्शाए जाने से सहमत नहीं थे। दलितों के उत्थान में गाँधी की भूमिका को सहर्ष स्वीकार करते रहे। इस सवाल पर वे प्रायः दलित लेखकों से भी टकराते रहे हैं।
हिन्दी दलित आत्मकथाएँ अम्बेडकरवादी दर्शन से प्रभावित हैं। लेखकों ने अनुभूति की प्रामाणिकता के तहत इसकी रचनाएँ की हैं। दलित समाज के दुख–दर्द, सामाजिक बहिष्कार की जातिगत समस्याएँ, आर्थिक उन्नति के साधनों का अभाव और धार्मिक अन्तर्विरोधों की तस्वीरें देखी जा सकती है। सही मायनों में इन आत्मकथाओं ने दलित बहुजन समाज को सही राह दिखाई है। नए भारत के निर्माण, रूढ़िवादी संस्कृतियों से मुक्ति, परिवर्त्तन की माँग, शोषण से मुक्ति, नारी–दलित उत्थान के प्रयत्न इन आत्मकथाओं में देखे जा सकते हैं। सुभाष चन्द्र का मानना है ''दलित साहित्यकारों की रचनाओं ने और विशेषकर आत्मकथाओं ने भारतीय साहित्य को नई दिशा दी है। दलित रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में समाज के उस वर्ग के दुःख–तकलीफों, हँसी–सुखी तथा जीवन के तमाम ऐसे पहलुओं को अभिव्यक्त किया जो साहित्य की दुनिया से सैकड़ों–हजारों सालों से बहिष्कृत रखा गया।'' [1]
अपनी आत्मकथा में लेखक ने रूढ़िवादी प्रथाओं को तोड़ने का प्रयास किया है। सामाजिक बन्धन जिसमें दलित–जीवन कसमसाता रहता है उनसे मुक्ति की प्रेरणा दी है। सभ्यता–संस्कृति के नाम पर, धार्मिक रूढ़ियों के नाम पर तन्त्रसाधना और अन्धविश्वास में दलितों को उलझाकर रखा जाता रहा है। दलित लेखकों ने ऐसे विचारों से दलित समाज को सावधान करने का सफल प्रयास किया है। 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित नव विवाहित दम्पतियों द्वारा सलाम प्रथा पर आपत्ति उठाई है। सवर्णो के घर–घर जाकर नई गृहस्थी के लिए पुराने सामान लाने की प्रथा को लेखक उचित नहीं मानता। वह इसको मानसिक और सामाजिक अपमान का हिस्सा मानता है। यह नए दम्पति को जातिगत हीनता बोध का एहसास करवाती है। संस्कृति के नाम पर मानवीय गरिमा का हनन किया जाता है, ''मैंने पिताजी के सवाल का उत्तर देने के बजाय, एक सवाल तेजी से दागा, ये सलाम के लिए जाना क्या ठीक है?'' [2] पिताजी ने मेरी ओर ऐसे घूरा जैसे मुझे पहली बार देख रहे हों। उन्हें चुपचाप देखकर मेरे मन की उथल–पुथल बाहर आने लगी। ''अपनी ही शादी में दुल्हा घर–घर घूमे... बुरी बात है... बड़ी जातवाले के दुल्हे तो ऐसे कहीं नहीं जाते.... ।'' [3] पिताजी खामोशी से मेरी बात सुन रहे थे, ''मुंशीजी, बस, तुझे स्कूल भेजना सफल हो गया है.. म्हारी समझ में बी आ गया है... ईब इस रीत कू तोड़ेंगे।'' [4] इसी तरह दैवीय सिद्धान्तों के कारण दलितों को मन्दिर–पूजा–आडम्बरों जैसी बातों में उलझाकर ब्राह्मणवाद उनका आर्थिक शोषण करता है। कर्मकाण्डों में उलझकर दलित हिन्दुत्व की राजनीति में फँस जाता है। कर्मकाण्ड–अन्धविश्वास, मन्दिर जैसी बातें ब्राह्मणवाद के वर्चस्व के आधार के हैं। यह दलितों के शोषण का भी आधार है।
पिता द्वारा देवता के लिए सूअर की पूजा शादी के पूर्व कराने के प्रस्ताव पर लेखक ने इसका विरोध किया था। धार्मिक कर्मकाण्डों में आर्थिक शोषण तो होता ही है। साथ–ही–साथ इससे ब्राह्मणवाद

को और बढ़ावा मिलता है वर्चस्व बढ़ाने का, ''मैने साफ मना कर दिया था। मैं किसी देवता की पूजा में विश्वास नहीं करता। पिताजी नाराज हो गए थे। मेरा अविश्वास उनकी आस्था पर चोट था जिसके लिए वे मुझे माफ करने को तैयार नहीं थे। अभी तक शायद मेरे पूजा–पाठ में शामिल न होने को मेरा बचपना मानकर कुछ विशेष जोर नहीं डालते थे, लेकिन शादी–विवाह जैसे मौके पर भी मेरा विरोध देखकर वे क्रोधित हो उठे थे। यह नाराजगी अन्त तक रही। इस बात के लिए मैं कतई तैयार नहीं था।'' [5] धर्म की आवश्यकता को डॉ. अम्बेडकर भी मानते थे। परन्तु यह भी महत्वपूर्ण है कि आडम्बरों से मुक्ति का मार्ग केवल शिक्षा में ही सम्भव है। शिक्षा से ही दलित समाज की मुक्ति सम्भव है ऐसा वे मानते हैं। दलित लेखक आडम्बरों में उलझकर कर्जदार बनने से बेहतर शिक्षा में धन खर्च करें तो बेहतर होगा। लेखक भी इसी भावना को 'जूठन' में दिखाते हैं। शिक्षा का प्रसार ही दलितों को हिन्दूकरण और धार्मिक आडम्बरों से मुक्ति दिला सकता है। दलितों की हीनता बोध को शिक्षा द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। यहाँ 'जूठन' आत्मकथा डॉ. अम्बेडकर के दर्शन को बखूबी आत्मसात किये हुए दिखती है।

'अपने–अपने पिंजरे' में नैमिशराय ने मेरठ में हुए दंगों को दर्शाया है। लेखक ने दिखाया है कि दलितों को जबरदस्ती हिन्दुत्व की राजनीति में शामिल कर मुसलमानों के खिलाफ दलितों को हथियार के तौर पर उपयोग करते हैं। जबकि अस्पृश्यता के तहत वे दलितों को हिन्दू धर्म के अन्तर्गत हीन मानते हैं। राम पुनियानी ने हिन्दुत्व की मानसिकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "हिन्दुत्व, दरअसल हिन्दू श्रेष्ठ वर्ग की राजनीति है। वह ब्राह्मणवादी मूल्यों को आधुनिक रंग देकर समाज पर लादना चाहती है। वह जातिगत और लैंगिक ऊँच–नीच की पोषक है। सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया की कट्टर विरोधी है।'' [6] हिन्दूवादी धर्म का छलावा दिखाकर दलितों को भ्रम में रखना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि दलित समाज कभी इन सबसे उबरे। उनमें शिक्षा का प्रसार न आए। यही वजह है कि तमाम दलित आत्मकथाओं में लेखकों ने सवर्ण शिक्षकों के दोहरे चरित्र का वर्णन किया है। धर्म के संघवादीकरण ने दलितों को लपेटे में रखने के लिए आधुनिक हिन्दुत्व का अमली जामा पहन लिया है। वे किसी दलित अस्मिता को स्वीकार नही करते। वे केवल हिन्दूवादी धारणा में यकीन रखते हैं। जब कभी भी कोई अस्मिता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती है तो हिन्दुत्व अपनी हिंसा की राजनीति में दलित या स्त्री अस्मिता को रौंद देता है। धर्म और संस्कृति की आड़ में अस्मिता का हनन कर दिया जाता है। यहाँ गौर करने वाली बात है कि हिन्दू अस्मिता दूसरी अस्मिताओं जैसे दलित अस्मिता, आदिवासी अस्मिता, स्त्री अस्मिता आदि जैसी किसी अस्मिता को स्वीकार नहीं करता। उसके लिए किसी भी छोटी–छोटी अस्मिताओं का कोई वजूद नहीं है। रजनी–कोठारी ने अपने लेख दलित उभार के मायने में लिखा है, "जाति और साम्प्रदायिकता को एक श्रेणी मानने में सबसे ज्याद गलतफहमी फैलती है। इसमें होता यह है कि धार्मिक आधार पर ध्रुवीकरण की कोशिशों और बहुलतावादी अस्मिताओं के राजनीतिक दुखों को एक समान समझा जाने लगता है। ध्यान रहे कि साम्प्रदायिक पहचान के दो परस्पर विपरीत असर पड़ सकते हैं। एक ओर वह सर्वभारतीय साम्प्रदायिक अस्मिता की रचना करती है और दूसरी ओर पहले से जारी छोटी–छोटी अस्मिताओं का क्षय करते हुए उन्हें अधीनस्थ बनाकर उनका उन्मूलन कर देती है।'' [7] नैमिशराय आत्मकथा में कई प्रश्न उठाते हैं। उनका मानना है कि हिन्दूवादी दलितों को अपनाते नहीं है, क्योंकि वे अछूत है। मुस्लिम भी उन्हें हिन्दू धर्म का अंग मानकर स्वीकार नहीं करते हैं। तो फिर साम्प्रदायिक दंगों में दलित को क्यों पीसा जाता है? धार्मिक उन्माद में अल्पसंख्यकों को क्यों घसीटा जाता है? इस भय की राजनीति से दलितों को दूर रहना चाहिए। "कुछ लोग हमारी जात के लोगों पर इल्जाम लगाते हैं कि हम मुसलमानों के साथ रहते–रहते दोगले हो गए हैं। हमारी संस्कृति, परम्परा के सूत्र बिखरकर न जाने कहाँ गुम हो गए थे। हम आधे मुसलमान थे और आधे हिन्दू। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने 6 दिसम्बर, 1956 में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। पर हम बौद्ध कहाँ थे? केवल 'बुद्धम् शरणम् गच्छामि' कहने से तो बौद्ध नहीं हो जाते। फिर हम कौन हैं? दंगे भड़कने पर मुसलमान हमें हिन्दू समझकर मारते हैं और जब कर्फ्यू नहीं होता तो हिन्दू चमार समझकर अपमानित करते हैं। पर हमारे कोई अधिकार नहीं थे। न कभी किसी ने दिये और न किसी ने लेने का प्रयास किया। कोल्हू के बैल जैसे एक ही जगह घूमते रहे। हमारी आँखों पर पट्टी बाँध दी गई।" [8] सार्वभौमिक भारतीय अस्मिता की आंधी में दलित अस्मिता जैसी अन्य छोटी–छोटी अस्मिताओं को महत्त्व नहीं दिया जाता है। धार्मिक उन्माद के बहाने हिन्दुत्व की हिंसा की रोटी सेंकी जाती है। देश में सामाजिक बदलाव को पीछे धकेलने की साजिश के तहत अल्पसंख्यक वर्ग की आधारभूत समस्याओं जैसे गरीबी, बेरोजगारी अस्पृश्यता आदि से भटकाती है। डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक न्याय की अवधारणा को साकार करने के लिए दलितों को धर्म की जकड़न और आडम्बरी दुनिया से बाहर आना होगा। उन्हें अपने समाज और उससे जुड़ी समस्याओं की तरफ ध्यान देना होगा। धर्म की राजनीति में न फँसकर अपने समाज में जागृति लाकर शिक्षा का प्रसार करना होगा। काँचो इल्लैया ने अपनी किताब 'मैं हिन्दू क्यों नहीं' में दिखाया है कि दलितों को हिन्दू धर्म की संस्कृति और राजनीति से दूर रहना चाहिए। दलित बहुजन की संस्कृति श्रम पर आधारित है जबकि ब्राह्मणवाद श्रम को महत्व नहीं देता। वह उसको घृणात्मक दृष्टि से देखता है। ब्राह्मणवाद दूसरों के श्रम पर पलने वाली संस्कृति है। हिन्दू संघ दलितों को मुस्लिमों व अन्य सम्प्रदायों के खिलाफ उकसाते हैं। गाँधी ने भी आर्य समाज के इस रवैये के खिलाफ विरोध दिखाया था। नैमिशराय 'अपने–अपने पिंजरे' आत्मकथा में मेरठ में हुए दंगों और उनमें पिसते दलितों को चेताते हैं कि उन्हें ऐसे धार्मिक उन्माद से दूर रहना चाहिए।

नैमिशराय दलितों में अस्मितामूलक प्रश्न उठाने की बात करते हैं। वे 'अपने–अपने पिंजरे' में दलितों के अतीत और वर्तमान की पड़ताल करते हुए समाज में उनकी स्थिति आंकते हैं। सवर्णो ने किस तरह साजिश कर दलितों का शोषण किया है इसको वे रेखांकित करते हैं, ''हम गरीब जरूर थे पर हमने न देश बेचा था न अपना जमीर। न हम डंडीमार थे और न ही सूदखोर। चोर, लुटेरों की श्रेणी में हम नहीं आते थे। हमारे पुरखों ने घर बनाए, शहर बनाए, पर न हमारे पास ढंग के घर थे और न बस्तियाँ। शहरों के भीतर बसने की कल्पना भी करना हमारे लिए मुश्किल थी। शहर–दर–शहर और उनके आस–पास छितरे हमारी जात के लोगों की यही दास्तान थी।.... हमलावरों की जात कोई भी हो सभी हमें रौंदते थे।.... पर सवर्णो की तरह हमने न मुगलों से समझौता किया न अँग्रेजों से सौदेबाजी की!.... हमारे माथे पर हमारी जातियों के नाम भी खुदते गये। जख्म–दर–जख्म जिनकी टीस हम झेलते रहे। सवाल हमारे लिए सलीब बने उत्तर कहीं से न मिले।'' [9] लेखक मानते हैं कि दलितों का इतिहास केवल शोषण और दमन का इतिहास रहा है। ब्राह्मणवाद ने भारतीय इतिहास में इनको स्थान नहीं दिया है। आज दलित जागरूक हो गया है। आज वह इतिहास पुरुष से प्रश्न करता है कि उसका अतीत क्या था और क्यों उसका वर्तमान और भविष्य शोषण की महागाथा है। नैमिशराय ने पिंजरे के माध्यम से दलितों के अतीत में अपनी अस्मिता की तलाश की। वह प्रश्न उठाते हैं कि क्यों दलितों के हिस्से में केवल शोषण आया है। डी.आर. नागराज ने हिन्दू अस्मिता के निर्माण की वैचारिकी पर अपने लेख 'कट्टर हिन्दू और हताश किसान' में लिखा है कि ''सैद्धान्तिकी स्तर पर देखने से साफ हो जाता है कि कोई भी सामूहिक अस्मिता हिंसा के बिना नहीं बन सकती। हिंसा की स्मृति को सुरक्षित रखने के

लिए हिंसा को ही नमक की तरह इस्तेमाल करना पड़ता है। जैसे ही विविध अस्मिताएँ राष्ट्र राज्य या समाज की पूर्वनिर्धारित सीमाओं में बँधने से इन्कार करती है, वैसे ही हिंसा उन्हें दबोचने के लिए झपट पड़ती है। हिन्दू अस्मिता हिंसा और उसके प्रभामण्डल के प्रति आदरभाव से ग्रस्त है। वह हिंसा को मान्यता देते हुए अपने निर्माण के लिए उसकी ऐतिहासिक आवश्यकता पर जोर देती है। उसकी राजनीति रक्तपात की स्मृतियों पर आधारित है चाहे यह रक्तपात उसके साथ किया गया हो या उसके दुश्मन के साथ जिससे उसे नफरत है। हिन्दू अस्मिता की राजनीति रक्त की तत्वमीमांसा पर जीवित रहती है।'' [10]

हिन्दुओं के लिए छोटी–छोटी अस्मिताएँ (दलित, स्त्री, आदिवासी आदि) जैसी अस्मिताओं की कोई अहमियत नहीं। उनके लिए दलितों का महत्व केवल इस प्रकार है कि वे मुसलमानों को अल्पसंख्यक दिखाना चाहते हैं। स्त्री को भी वे पितृसत्तात्मक परम्परा के तहत स्वीकारते हैं। श्यौराज सिंह बेचैन ने अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर' में यह दिखाया है कि किस तरह दलितों का हिन्दूवादी मुसलमानों के खिलाफ इस्तेमाल करते हैं। वे उन्हें बरगलाते हैं। धर्म की आड़ में मुसलमानों को उनका विरोधी दिखाते हैं। लेखक ने बब्बा के व्यवहार द्वारा दिखाया है कि वे हिन्दुत्व की राजनीति के शिकार हो गए थे। यही वजह है कि वे यादवों पर तो विश्वास करते थे परन्तु मुसलमानों को शक की निगाह से देखते थे। इसकी पुष्टि लेखक अपनी कमाई को रामसिंह प्रधान के पास पैसे रखने से करते हैं। लेखक आत्मकथा में लिखते हैं न जाने क्यों वह हिन्दुओं को अपना और मुसलमानों को गैर समझते थे। हालांकि यह उनका पूर्वाग्रह ही था। जबकि हिन्दुओं ने उनसे हाड़तोड़ काम लेने में कभी कमी नहीं की हो या पूरी मजूरी दी हो इसके उदाहरण नहीं थे। जब कभी शहर से हिन्दू–मुस्लिम झगड़े की खबर मिलती हमारी पूरी बस्ती अपने गाँव के मुसलमानों से चौकन्ना होने लगती है, जबकि मेरी स्मृति में ऐसा एक भी उदाहरण नही है, जिसके आधार पर कह सकें कि, सवर्ण हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों ने हम पर कोई हमला किया या स्पृश्य हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक अस्पृश्यता का बर्ताव किया।'' [11] घृणा और नफरत के बदले बन्धुत्व के भाव का प्रसार डॉ. अम्बेडकर के जीवन का उद्देश्य रहा है।

आत्मसम्मान की रक्षा दलितों में नई क्रान्ति है जो अम्बेडकरवादी चेतना द्वारा आई है। शिक्षा, रोजगार और स्वयं पर विश्वास होना ही व्यक्ति के अस्तित्व का निर्माण करता है। आज का दलित समाज अपने सम्मान की लड़ाई लड़ना जानता है। वह गलत बातों का विरोध करता है। ब्राह्मणवाद सदियों से दलितों को जहालत भरी जिन्दगी जीने के लिए मजबूर करता है। दलितों में संगठन और संघर्ष की भावना आ गयी है। दलित आत्मकथाओं में ब्राह्मणवाद का विरोध इसी का प्रमाण है। दलित आत्मकथाकार चौहान दलितों में एकता और सहयोग की भावना को रेखांकित करते हैं। आत्मकथा में दिखाया गया है कि ब्राह्मणवाद अपने फायदे के लिए दलितों को अपना मोहरा बनाकर अपास में लड़वाते हैं, दण्डित करते हैं। खचेरा इसी तरह का चरित्र है जो दलित होकर भी ब्राह्मणवादी साजिशों के तहत दलितों पर अत्याचार करता है। इसीलिए उसे 'बलार' की उपाधि दी गई है। लेखक ने इस तरह की साजिशों से दलितों को सावधान किया है। वे आत्मकथा में संकेत देते हैं कि दलितों में अब चेतना आ रही है। वे समझने लगे हैं कि ब्राह्मणवाद उनमें फूट डालकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। दलित अब सवर्णो की इस मंशा को समझने लगे हैं प्रभु, कल्लन, सुमरू, परसादी, लोटन और इतवारी सभी लेखक और उसके पिता द्वारा मकान बनाने पर उसका साथ देते हैं। यह बात ठाकुर को बरदाश्त नहीं, तभी वह जाटवों को उकसाता है, मारपीट करने के लिए। फिर यहाँ दाँव उल्टा पड़ जाता है, ''ठाकुर तुमने हमें क्या खचेरा समझ रखा है। तुम खचेरा को ही तरह–तरह के लालच देकर बहका सकते थे, बहुत लड़ाया है तुमने हमें आपस में। हम अपनी जिन्दगी जीना सीख गए हैं, अब हम तुम्हारी बातों में आने वाले नहीं... अपना भला चाहते हो तो चले जाओ यहाँ से, वरना ठीक न होगा'' [12] कल्लन चाचा ने दूर खड़े लटूटी, रोशन पण्डित, चन्द्रभान व दूसरे बसीटों की ओर देखते हुए ऊँची आवाज में कहा जिससे कि आवाज उन तक पहुँच जाये। जाटव कल्लन चाचा की आवाज सुनकर खजानी, तिरखा, मसीया और पन्ना सभी मंत्री हाथों में लट्ठ थामे अपने–अपने घरों से निकल आये। ''मैया रोहन आज ठाकुर लटूरी ने हमे अपने यहाँ बुलाकर तेरो मकान न बनने देने के लिए खूब भड़काया था।'' ताऊ प्रभु ने सारी बातें बताते हुए पिता से कहा था।'' [13] दलितों में यह एकता सवर्णों के लिए आश्चर्य और अपमान का विषय है। डॉ. अम्बेडकर दलितों में एकता देखना चाहते थे। संगठन और संघर्ष का रूप देखना चाहते थे। शिक्षित होकर ही दलितों में इसका संचार हो सकता है। लेखक ने दलितों में इसकी पहल को खूब सराहा है और अपनी आत्मकथाओं में महत्वपूर्ण घटना के तौर पर वर्णन किया है। आशा के विपरीत दलितों की यह एकता ब्राह्मणवाद के खिलाफ शंखनाद है कि बहुत हुआ भेदभाव और बंटवारा के नाम पर उनका जातिगत शोषण।

डॉ. अम्बेडकर महिलाओं की उन्नति से ही किसी देश के विकास को मापते थे। अम्बेडकरवादी चेतना का प्रभाव दलित पुरुषों तक ही नहीं था। महिलायें भी सामाजिक आन्दोलन में अम्बेडकर के साथ बराबर कन्धा मिलाकर सहयोग कर रही थी। कौशल्या बैसन्त्री की आत्मकथा दलित स्त्री सशक्तीकरण में मील का पत्थर हैं। इस आत्मकथा में प्रत्येक स्त्री चरित्र दलित समाज से है, फिर भी दोहरे शोषण के बावजूद उन सभी में अदम्य साहस, संघर्ष, और बेहतर कर गुजरने की इच्छाशक्ति दिखाई देती है। बैसन्त्री ने स्वयं से जुड़े प्रसंग में अनेक स्त्रियों के जीवन चरित्र का जिक्र किया है जो प्रेरणादायक पात्र है। ये सभी स्त्री पात्र श्रम और संघर्ष के बल पर पितृसत्तात्मक और ब्राह्मणवादी मानसिकता का सामना करती दिखती है। अनित भारती के 'दोहरा अभिशापः दलित स्त्री संघर्ष को महाकाव्य' में अनेक दलित महिला पात्र हैं जो सशक्त रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है। सबकी अपनी–अपनी विशेषताएँ हैं। ये सारे पात्र दलित महिलाओं के समाज जनित चरित्र को उभारकर रखते हैं।'' बैसन्त्री ने अपनी आत्मकथा में आजी, माँ, कमनी आत्या, सोगी, ठमि, जाई, बाई झूलाबाई, आदि आत्मनिर्भर और आत्मविश्वास से परिपूर्ण स्त्री पात्र का चित्रण किया है। मानिनी आजी के बारे में लेखिका लिखती हैं, ''आजी हरदम कहा करती थीं कि वह अपनी लड़ाई खुद लड़ेगी, किसी पर बोझ नहीं बनेगी। अंपने कफन का सामान भी वह स्वयं जुटाएगी और उन्होंने अपनी बात पूरी करके दिखाई। कफन का सारा सामान उनकी गठरी में मौजूद था। यह मानिनी स्वाभिमान से रही, किसी के आगे नहीं झुकी।'' [14]

लेखिका की माँ भागेरथी और पिता की तरह जाई बाई चौधरी और झूलाबाई जैसे पात्र शिक्षा के महत्व को जानते थे। यही वजह है कि लेखिका की माँ ने अशिक्षित होकर भी बेटियों को शिक्षित–भरा माहौल प्रदान किया। स्वयं अथक प्रयासरत होकर गृहस्थी चलाने हेतु पति का पूर्ण सहयोग करती। दलितों को पढ़ाने हेतु झूला और जाईबाई द्वारा स्कूल की स्थापना सराहनीय कार्य की श्रेणी में आता है। शिक्षा ही दलितों की दशा और दिशा बदल सकता है, "जाईबाई के स्कूल में पढ़ाई की कोई फीस नहीं ली जाती थी। कभी–कभी शिक्षक नहीं मिलते थे तो उनका लड़का, कभी–कभी वह भी हमें पढ़ाती थीं। हमारे पास ही चोखामेला अस्पृश्य विद्यार्थी हॉस्टल था। वहाँ नागपुर से बाहर के लड़के रहते थे। कभी–कभी ये विद्यार्थी भी हमें पढ़ाने आया करते थे।'' [15] दलित चेतना का प्रभाव बैसन्त्री की आत्मकथा में कई जगह देखी जा सकती है। खासकर स्त्री पात्रों में। जो डॉ. अम्बेडकर के शिक्षित होने, संघर्ष करने के सिद्धान्त से लैस थे। मुर्दहिया में डॉ तुलसीराम ने अन्धविश्वास और मूर्खता से दलितों के जीवन की बात शुरू की है। गौरतलब है कि यहाँ मूर्खता और

अन्धविश्वास शिक्षा के अभाव के कारण आई है न कि अयोग्यता के कारण। वे अपने पूर्वजों (दलितों) से इसकी पड़ताल करते हुए बताते हैं कि सामाजिक प्रताड़नाओं के कई आयाम हैं पर इसकी जड़ में मौजूद अन्धविश्वास और अशिक्षा रही है। वे लिखते हैं, ''मूर्खता मेरी जन्मजात विरासत थी। मानव जाति का वह पहला व्यक्ति जो जैविक रूप से मेरा खानदानी पूर्वज था उसके और मेरे बीच न जाने कितने पैदा हुए किन्तु उनमें से कोई पढ़ा–लिखा नहीं था। लगभग तेईस सौ वर्ष पूर्व यूनान देश से भारत आए सिकन्दर ने कहा कि आम भारतीयों को लिपि का ज्ञान नहीं था, इसलिए वे पढ़–लिख नहीं सकते। उसके समकालीन न तो कोई–प्रतिक्रिया नहीं दी, किन्तु आधुनिक भारतीय पंडो ने सिकन्दर का खूब खण्डन–मण्डन किया। हकीकत तो यह है कि आज भी करोड़ों भारतीय सिकन्दर की कसौटी पर खड़ा उतरते हैं। सदियों पुरानी इस अशिक्षा का परिणाम यह हुआ कि मूर्खता और मूर्खता के चलते अन्धविश्वासों का बोझ मेरे पूर्वजों के सिर से कभी नहीं उतरा....'' [16] अशिक्षा के अभाव में समाज कुछ लोगों को भी अपशकुन मानता है, जैसे– विधवा, काना भूत, कौवे, साँप, गिद्ध आदि। आत्मकथा में लेखक तुलसीराम ने अन्धविश्वास का जहाँ–तहाँ प्रकोप दिखाया है जिसके कारण दलित जीवन त्रस्त रहता है। गाँव में लोगों की बिमारी का इलाज बलि व भोज से होता है। गाँव की हर बिमारी में भूत–प्रेत, चुडैल, गिद्ध–सियार और अकाल का कारण अन्धविश्वास और मूर्खता है। लेखक ने आत्मकथा के माध्यम से दलितों को सावधान करने का प्रयास किया है कि बिना शिक्षा के दलितों की मुक्ति नहीं हो सकती। अन्धविश्वास दलित समुदाय में रचा–बसा है और वे इसी में समस्या का समाधान भी खोजते हैं। हंस पत्रिका में राजेन्द्र यादव का लेख :सीढ़ियाँ है आत्मकथाएँ' विचारणीय है "हर बिमारी, असफलता के पीछे कोई–न–कोई भूत है, उसका उपचार करने के लिए ओझा–गुणी है, सुअर की खाल और भोज–भात है।'' [17] मुर्दहिया में डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि व दर्शन को लेखक ने बखूबी दिखाया है। दलित समाज जब तक शिक्षित नहीं होता तब तक मूर्खता और अन्धविश्वास उसे विकास करने नहीं देगी।

निष्कर्ष

डॉ० तुलसीराम ने बहुजन समाज की पीड़ा को अत्यंत गंभीरता और यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी आत्मकथा के दोनों भागों 'मुर्दहिया' तथा 'मणिकर्णिका' में जो जीवन वर्णित है, वह दलित की समस्त सांस्कृतिक वैशिष्ट्य से युक्त है। अतएव कहा जा सकता है कि वे बहुजन समाज के सबसे बड़े हित चिंतक थे।

संदर्भ सूची

1. 'दलित आत्मकथाएँः अनुभव से चिंतन'– सुभाषचन्द्र, पृ०– 7
2. 'जूठन'– ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ०– 44
3. वही, पृ०– 125
4. 'दलित और हिन्दुत्व'– रामपुनियानी, पृ०– 56
5. 'आधुनिकता के आइने में दलित'–संपा–अभय कु० दुबे, पृ०– 253
6. 'अपने–अपने पिंजरे'– मोहन दास नैमिशराय, पृ०– 49–50
7. 'भारत का भूमंडलीकरण'– सं० अजय कुमार दुबे, पृ०– 345
8. 'मेरा बचपन मेरे कंधे पर'– श्यौराज सिंह बैचेन, पृ०– 119
9. 'थमेगा नहीं विद्रोह'– उमराव सिंह जाटव, पृ०– 47
10. 'दोहरा अभिशाप', पृ०– 29
11. वही, पृ०– 39
12. 'मुर्दहिया', पृ०– 9
13. 'हंस'– राजेन्द्र यादव, फरवरी– 2011, पृ०– 4
14. 'अपने–अपने पिंजरे', पृ०– 76
15. 'जूठन', पृ०– 15
16. 'तिरस्कृत'– सूरजपाल चौहान, पृ०– 29
17. 'मुर्दहिया', पृ०– 90